# ज्ञान की कथा

**अविनाश झा**

'अतिक्रमण की अंतर्यात्रा : ज्ञान की समीक्षा का एक प्रयास'
लेखक : प्रसन्न कुमार चौधरी
सी.एस.डी.एस/वाणी प्रकाशन, 2015

यह एक अत्यंत महत्त्वाकांक्षी पुस्तक है— जो हमारे युग की एक समग्र समझ और इस समझ का विस्तृत तार्किक एवं बौद्धिक आधार प्रस्तुत करता है। इस पुस्तक के लेखक प्रसन्न कुमार चौधरी कवि (1) दार्शनिक (2) सामाजिक अनुसंधानकर्त्ता (3), ब्लॉगर (4) और चिंतक हैं जो महानगरीय अकादमिक तंत्र के बाहर स्वतंत्र बौद्धिक उद्‌म में लगे हुए हैं। प्रस्तुत पुस्तक 'अतिक्रमण की अंतर्यात्रा : ज्ञान की समीक्षा का एक प्रयास' इनकी नयी पुस्तक है। इसके शीर्षक से इसके अंर्तवस्तु का अंदाज़ा लगाना मुश्किल है। इस पुस्तक के पाँच खण्डों में जिन विषयों की पड़ताल हुई है, विषय-वस्तुओं का यह समूह भी अनूठा है। समकालीन मस्तिष्क विज्ञान से लेकर ज्ञान अर्थशास्त्र तक, या फिर मध्यपाषाण कालीन समाज से लेकर इंटरनेट की दुनिया तक विषयों का विस्तार है। इन विषयों को एक सूत्र में बाँधता हुआ है ज्ञान का प्रश्न। इस ज्ञान के प्रश्न का प्रस्थान बिन्दु है आज के समय में बनता विश्वव्यापी ज्ञान-समाज जिसे हम सूचना युग भी कहते हैं। इस प्रश्न का संधान व्यापक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में होता है।

एक तरह से मनुष्य की कहानी ही इस पुस्तक की विषय-वस्तु है। 'सीमाओं का अतिक्रमण मानव जाति का स्वभाव है' — ऐसा हम पुस्तक के फ्लैप पर पढ़ते हैं। और फिर आगे :

'जनों की संस्कृति प्रकृति का अतिक्रमण थी, कृषि संस्कृति जनों की संस्कृति का, और औद्योगिक संस्कृति कृषि संस्कृति का। इस औद्योगिक संस्कृति के अतिक्रमण की शक्ल-सूरत क्या होगी। अगर यह अतिक्रमण जारी है तो यह किस रूप में हो रहा है'

यह अंतिम प्रश्न ही इस पुस्तक में प्रस्तुत मनुष्य की कहानी को एक परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है। आज की दुनियाँ में बन रही ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था एवं ज्ञान-आधारित संस्कृति किस प्रकार से औद्योगिक व्यवस्था का अतिक्रमण कर रही है? इस नयी बनती व्यवस्था में अन्याय और दमन के क्या रूप हैं? पुस्तक का अंतिम भाग 'ज्ञान का अर्थ' इन्ही प्रश्नों से उलझता है। इस संदर्भ में हम पुस्तक के उपशीर्षक 'ज्ञान की समीक्षा का एक प्रयास' के तात्पर्य को समझने लगते हैं और उम्मीद जगती है कि मनुष्य की कहानी जो यहाँ कही गयी है, वो एक ख़ास प्रस्थान बिन्दु से कही गयी है। ऐसा लगता है कि ये एक सामान्य ऐतिहासिक सर्वे न हो कर अतिक्रमण की अंतर्यात्रा' से हमारा साक्षात्कार कराएगी।

ऐसी ही उम्मीद लिए यह समीक्षक ऐसे सूत्रों की तलाश में विभिन्न अध्यायों के चक्कर काटता रहा। तलाश व्यर्थ भी न हुई, परंतु समस्या यह थी कि पुस्तक की बौद्धिक स्थापनाओं और इसके वैचारिक संरचना का समग्र उद्‌घाटन लेखक ने कहीं नहीं किया है। एक विवरणात्मक अंदाज़ में एक एनसाईक्लोपीडिया की तरह हम अनेक खण्डों से गुज़रते रहते हैं। दार्शनिक सूक्तियाँ, वैचारिक स्थापनाएँ एवं थ्योरीयाँ हर जगह बिखरे पड़े हैं। इस यात्रा में लेखक हमें कहाँ ले जाना चाहता है इसकी शिनाख्त के लिए हमें लेखक से बहुत मदद नहीं मिलती। चार सौ पृष्ठों के इस पुस्तक में अंत के करीब सत्तर पृष्ठ में दिये गये परिशिष्ट, शब्दावली, अनुक्रमणिका एवं संदर्भ ग्रंथों की सूची इत्यादि पुस्तक में प्रयुक्त सामग्री की पड़ताल में अवश्य मददगार है। पर विषय-सूची इतनी संक्षिप्त है कि पढ़ी हुई चीज़ दोबारा ढूँढ़ना मुश्किल हो जाता है। हमें उम्मीद है कि पुस्तक का दूसरा संस्करण भी आएगा और लेखक से विनती है कि वो एक विस्तृत विषय-सूची इसमें जोड़ दें। पुराने युरोपीय ग्रंथों में कई पृष्ठों की विषय सूचियाँ आम थी और इस पुस्तक को ऐसे ही विषय-सूची की ज़रूरत है।

**ज्ञान युग**

हम पुस्तक के पाँचवे ओर अंतिम खण्ड 'ज्ञान का अर्थ' से बात शुरू करते हैं जिसके चार अध्यायों में विश्वव्यापी ज्ञान-अर्थव्यवस्था के बढ़ते वर्चस्व का बहुआयामी वर्णन है। इस दौरान लेखक एक प्रश्न रखते हैं :

> 'ऊपर हमने अपनी आँखों के सामने घट रहे जिन परिवर्तनों का संक्षिप्त ब्यौरा प्रस्तुत किया है, क्या वे इस बात के सबूत हैं कि हम मानव इतिहास के एक नये युग में दाख़िल हो चुके है? एक ऐसा नया युग जिसमें इतिहास का मुख्य क्रियास्थल (जन, भूमि, विनिमय से आगे निकलकर) ख़ुद मानव मस्तिष्क है?' (पृ. 237).

उनके अनुसार आज के विचारक मुख्य रूप से दो उत्तर देते हैं।

'एक, अनेक विचारकों की नज़र में यह कोई नया युग नहीं, पूँजीवादी (विनिमय के युग) का ही नया विकास है, नया चरण है। ... दूसरा पक्ष इन परिवर्तनों की शिनाख़्त नये युग के रूप में करता है, और इसे ज्ञानयुग की संज्ञा से अभिद्वित करता है।' (पृ. 237)

लेखक भी आज के युग को एक नये ज्ञान युग के प्रादुर्भाव के रूप में देखता प्रतीत होता है। आगे जाकर यह स्पष्ट युक्ति हमें मिलती है : 'बहरहाल, ज्ञान-समाज का मुख्य क्रिया स्थल मानव मस्तिष्क है।' (पृ. 275) जब हम ज्ञान युग की बात करते हैं तो एक स्पष्टीकरण ज़रूरी है। क्यूँकि ज्ञान का अर्थ इस युग में वही नहीं है जो अब तक हुआ करता था। लेखक ये स्पष्टीकरण देता है :

> 'आजकल हम ज्ञान का जिस अर्थ में प्रयोग करते हैं, वह न तो आध्यात्मिक-धार्मिक ज्ञान है, और न ही हमारे अस्तित्व के अनिवार्य अंग के रूप में सामान्य रूप से मौजूद ज्ञान-क्रिया है। यह ज्ञान हमारी अंतर्निहित ज्ञान-क्षमता और ज्ञान-क्रिया का विशिष्ट रूप है— वह सूचना-उत्पाद है। ज्ञान के संधान का मतलब नयी-नयी सूचनाओं का अनवरत संधान है और ज्ञानक्रिया का अर्थ है सूचनाओं का प्रसंस्करण तथा विनिमय के लिए तैयार सूचना-उत्पादों का सहजन। कम्प्यूटर इसी क्रिया को सम्पन्न करने वाला ज्ञान-उपकरण है।... उत्पादन के उपकरण जिस तरह सामूहिक श्रमक्रिया की उपज थे, उसी तरह सूचना उत्पाद व्यक्तिगत तथा सामूहिक ज्ञानक्रिया के।' (पृ. 237-38)

इस स्पष्टीकरण में दो चीज़ें गौण हैं। एक तो ज्ञान की ऊपर दी गयी परिभाषा, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान में प्रचलित परिभाषाओं से बिल्कुल ही भिन्न है। यही वजह है कि विश्वविद्यालय या वैज्ञानिक मानसिकता सूचना-उत्पाद में प्रयुक्त ज्ञानक्रियाओं को ज्ञान के रूप में देखने में असमर्थ होती है। इस भिन्नता पर लेखक कोई मनतव्य नहीं देता है। तो क्या हम यह समझें कि विज्ञान से सूचना की ओर ज्ञान की इस गति में लेखक कोई अतिक्रमण नहीं देखता, सिर्फ़ एक क्रमिक विकास ही। न ही लेखक 'हमारे अस्तित्व के अनिवार्य अंग के रूप में सामान्य रूप से मौजूद ज्ञान क्रिया' की कोई व्याख्या करता है। क्या मनुष्य अनिवार्य रूप से एक ज्ञानवान प्राणी है? पुस्तक के पहले के हिस्सों में प्रागैतिहासिक मानव, मध्यपाषाण कालीन मानव इत्यादि की व्याख्या में हम इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने की कोशिश करेंगे। फिलहाल समकालीन ज्ञान युग के उनके विश्लेषण के साथ चलते हैं।

इस विश्लेषण में पहला चरण है - स्थूल पर सूक्ष्म का नियंत्रण। लेखक के अनुसार इस प्रक्रिया ने पिछली शताब्दी के 90 के दशक से जीवन के सभी क्षेत्रों में निर्णायक स्थान ग्रहण कर लिया है। 'सूक्ष्म कणों और शक्तियों पर आधारित विकास के दो सबसे महत्त्वपूर्ण सूचक है : इंटरनेट और वेब।' (पृ. 228) यहाँ हम कैसे भूलें कि सूक्ष्म का स्थूल में विस्फोट तो हिरोशिमा और नागासाकी में हो चुका था। उसी ज़माने में सूचना-सैद्धांतिकी का उदय भी हुआ, जिसे उस मसय 'साइबरनेटिक्स' के रूप में जाना जाता था। सूचना सैद्धांतिकी के लिए सूक्ष्म से सूक्ष्म कण भी स्थूल ही है, असली सूक्ष्म चीज़ तो 'सूचना' या 'मेसेज' है जो कि स्थूल के नियंत्रण के मूल में है। इंटरनेट का उद्गम भी कहते हैं कि सम्भावित आणविक युद्ध के मध्य सूचनाओं के आदान-प्रदान के तंत्र के रूप में होना शुरू हुआ। यह ज़रूर है कि इन अविष्कारों के विकास में कालान्तर में एक प्रकार की युटोपियन ऊर्जा ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। जिस संदर्भ में लेखक 'वैज्ञानिक-तकनीशियनों की ग़ैर-स्वामित्व मूलक सहक्रिया' की बात करते हैं। परंतु गैर-स्वामित्व मूलक सहक्रिया इंटरनेट का परिणाम है उसका कारण नहीं।

ज्ञान-अर्थव्यवस्था में गहराई से जाने के पहले लेखक बीसवीं शताब्दी में औद्योगिक और वित्तिय पूँजी के उतार-चढ़ाव का एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हैं, जो मार्क्स के विश्लेषण से प्रेरित है। ज्ञान-अर्थव्यवस्था का विश्लेषण शुरू होता है इस स्थापना से कि 'नयी अर्थव्यवस्था सामाजिक रूप से उपलब्ध खाली समय पर आधारित है।' (पृ. 255) इस अर्थशास्त्रीय

विवेचना की बारीकियों के संसधान में यह समीक्षक सक्षम नहीं है। पर इतना ज़रूर कह सकते हैं कि इसमें तार्किक स्पष्टता है। एक तरफ़ जहाँ मार्क्स के 'ग्रुड्रिसे' में प्रस्तुत 'खाली समय' पर विचार से लेकर समकालीन अर्थशास्त्र में ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था पर विभिन्न विचारधाराओं से हमारा साक्षात्कार होता है, वहीं दूसरी ओर इंटरनेट संस्कृति के विभिन्न आयामों का सुंदर विवरण भी उपलब्ध होता है।

**आवारा मुक्त काल**

ज्ञान-अर्थव्यवस्था के विश्लेषण का मुख्य औज़ार लेखक के लिए 'खाली समय' ही है। कई सारे सूचना-उत्पादों और सेवाओं का उपभोग खाली समय में ही होता है, ऐसा तर्क है। मनुष्य के जागृत समय की 'उत्पादक समय' और 'खाली समय' में यह विभक्ति औद्योगिक व्यवस्था का एक मुख्य लक्षण है। पर क्या यह हर समय और हर स्थान पर लागू होती है? लेखक अपने ब्लॉग पर कहते हैं कि 'मनुष्य का यह आवारा मुक्त काल और उस मुक्तकाल के दौरान की जाने वाली क्रियाएँ मानवजाति के इतिहास में अन्वेषण, आविष्कार तथा नवाचार का मौलिक स्रोत रही है। इसलिए इस आवारा काल पर आधारित व्यवस्था ज्ञान-अर्थवस्था कहलाती है।'

इस समीक्षक की राय में यह कथन इस ज्ञान युग का एक मिथक है जिसके अनुसार स्वतंत्रता आविष्कार की जननी है। कि जब हम मुक्त होते हैं तभी अविष्कार करते हैं। हमें ऐसा लगता है कि, 'आवश्यकता अविष्कार की जननी है। हम किसी बिंदु पर फँसे होते है', अटके होते हैं और अविष्कार एक नया रास्ता खोल देता है और उस स्थिति से मुक्ति का अवसर मिल जाता है। ज़्यादातर ऐसे अविष्कार जिन पर आधारित द्वितीय विश्व युद्ध के बाद को औद्योगिक अर्थव्यवस्था बनी, उनका जन्म युद्धों के दौरान ही हुआ। एक नये अविष्कार के इर्द-गिर्द कई नवाचार रचे जा सकते हैं जिसे हम इनॉवेशन कहते हैं। मूल अविष्कारों पर आधारित बिक्री योग्य या मुनाफ़ा कमाने योग्य वस्तुओं का निर्माण ऐसा ही नवाचार है।

इसी पुस्तक में बहुत पहले एक दूसरे संदर्भ में लेखक ख़ुद कहते हैं कि 'जहाँ प्रकृति जी खोलकर अपना ऐश्वर्य लुटाती है, वैसे प्रदेशों में बसने वाले मानव समुदायों में नया कुछ करने, जीविकोपार्जन की कोई नयी विधि अपनाने की प्रेरणा नहीं आती'। (पृ. 49) दूसरे शब्दों में, जब हम अपने को सीमाओं में बँधते पाते हैं, तो एक हद के बाद उनका अतिक्रमण एक अनिवार्यता बन जाती है। यहाँ भी लेखक की भाषा एक मोड़ लेती है और वे कहते हैं : 'सीमाएँ उसे हमेशा अतिक्रमण का निमंत्रण देती हैं और मनुष्य उस निमंत्रण को सहर्ष स्वीकारता रहा है।' (पृ. 49) निमंत्रण? सहर्ष स्वीकार? परंतु ये अलग बात है। यह मनुष्य की खोजी प्रवृत्ति की बात है, और वो भी जीवन का अंग है। यहाँ जीवन में 'खोज' को 'निर्वाह' से ऊपर उठाकर देखा जा रहा है।

लेखक ने ज्ञान-अर्थव्यवस्था के विश्लेषण का मुख्य भार इस 'खाली समय' पर डाल दिया है और सृजनशीलता से जोड़कर इसे ऐसी गरिमा दे दी है जिससे आज की विश्व व्यवस्था के सूत्रधारों और पैरोकारों को ज़रा भी तकलीफ़ होगी। यही तो उनका दावा है जो लेखक पेश करता है : 'ज्ञान अर्थव्यवस्था बाध्यतामूलक उत्पादन क्रिया पर स्वाधीन सृजनशीलता के शासन का दावा प्रस्तुत करती है' (पृ. 265) क्या ये दावा हम मान लें?

हम मान सकते हैं कि इंटरनेट के रूप में ज्ञान की दुनियाँ में एक विस्फॉट हुआ है। थोड़ा पीछे जाकर देखें तो आधुनिक विज्ञान ने भी एक दावा किया था। कि वो मानव जाति को अंधकार से प्रकाश में ले जाएगी। उससे ही जुड़ा एक और दावा था। कि वो मानवजाति को अभाव से मुक्ति दिलाएगी। पूरी दुनियाँ इन दावों को मान कर ही चली और वहाँ पहुँची जहाँ हम हैं। यह ज़रूर है कि वैज्ञानिक क्रांति ने इस दुनियाँ को बदल डाला और ज्ञान को दुनिया में एक विस्फोट ले आया। इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है। पर वो दावे तो अभी तक पूरे नहीं हुए।

इस पूरे पुस्तक में मध्ययापाषण कालीन ज्ञान से लेकर इंटरनेट युग के ज्ञान तक की चर्चा है पर आधुनिक विज्ञान की कोई व्याख्या नहीं है। आधुनिक समाज में व्याप्त सेक्यूलर विचार प्रणालियों की परीक्षा भी हुई है पर आधुनिक ज्ञान-विज्ञान या कहें विश्वविद्यालीय विद्या पर अलग से कोई प्रकाश नहीं है। मानो वह स्व-प्रकाशित हो और उस पर प्रकाश डालने की ज़रूरत ही न हो। इसका परिणाम ये है कि आधुनिक विद्या के स्रोत अंधकार में चले गये हैं। जिस कारण इस पुस्तक की वैचारिक और काल्पनिक संरचना ख़ुद ही अँधेरे में आ गयी और दार्शनिक पक्ष गौण हो गया है।

विज्ञान के प्रकाश में और सारे प्रकाश अँधेरे में चले गये। जिससे सारी दुनिया हिल गयी अभाव, हिंसा, युद्ध का दौर चलता ही रहा। और अब दुनिया फिर से बदल रही है। बड़े युद्धों की जगह अनगिनत छोटे युद्धों ने ले ली है। युद्ध चलते रहते हैं, विराम क्षणिक होता है। विश्व अर्थव्यवस्था का रूप बदल गया है। इस नयी अर्थव्यवस्था में गति का स्रोत सूचना क्रांति में

है। सूचना-क्रांति भी ज्ञान का एक विस्फोट है। इस क्रांति का स्थान है इंटरनेट पर जुड़ी हुई डिजिटल दुनिया, सरकारें, संस्थाएँ, बाज़ार, परिवाहन इत्यादि, इत्यिादि सब जुड़े हैं। अब 'इंटरनेट' एक नया दावा प्रस्तुत कर रहा है ज्ञान आधारित समाज बनाने का दावा और स्वतंत्र सृजनशीलता का दावा। क्या हम इस दावे को मान लें? एक बात तो है कि इंटरनेट युग में ज्ञान का विस्तार हो गया है और विज्ञान के अलावा कई सारे ज्ञान प्रकाश में आ गये। हर क्रिया में ज्ञान पक्ष की पहचान बनी। पर साथ ही अपने ज्ञान के आधार पर अपनी जीविका चलाने वाले संसाधन और अधिकार खोते जा रहे हैं। जब कई समुदायों को अपनी जगह और अपने साधनों से जबरन हटा कर कहीं ठेल दिया जाता है तो इस स्थिति में उनका ज्ञान उनकी जीविका के लिए अप्रासंगिक हो जाता है और वे मात्र 'श्रमिक' बनने पर मजबूर हो जाते हैं। और इन्हीं समुदायों के ज्ञान के अधिक दोहन की व्यवस्थाएँ भी बन रही हैं। इन विस्थापितों के ज्ञान का दावा क्या ज्ञान युग स्वीकारेगा? जिन खदानों और बिजलीघरों के लिए लोग जबरन विस्थापित हो रहे हैं क्या वे इस नये बनते ज्ञान युग का ज़रूरी हिस्सा नहीं है?

**मस्तिष्क की दासता**

ऐसा नहीं कि लेखक ज्ञान युग में अंतर्निहित कोई द्वंद्व नहीं देखते। इसके लिए हमें ज्ञान युग के उनके विश्लेषण के दूसरे चरण में इस सूत्र पर जाना होगा - 'ज्ञान समाज का मुख्य क्रिया स्थल मानव मस्तिष्क है।' यहाँ लेखक ज्ञान युग की उस धारा को मध्य में लाते हैं जहाँ कृत्रिम मस्तिष्क बनाने के प्रयत्न समकालीन मस्तिष्क विज्ञान और कोग्निटिव साइंस से जुड़ते हैं। यहाँ ये बताना अप्रासंगिक न होगा कि कृत्रिम बुद्धि के अलावा अनुसंधान के दूसरे रास्ते भी खुल चुके हैं जिनमें उल्लेखनीय है 'एनैक्सन' थ्योरियों जो ज्ञान और क्रियाओं को मूलभूत रूप से जुड़ा पाते हैं। इस अनुसंधान धारा का बीज फ्रांसिस्को वरेला की पुस्तक 'द एमबॉडिड माइंड' में देखा जाता है। वापस हम अपने पुस्तक पर आएँ।

पुस्तक की अंतिम पंक्तियों में लेखक लिखते हैं :

> 'न्याय के विवेक के अभाव में ज्ञान का अर्थ मस्तिष्क की दासता की नयी दास्तान बन जाएगा। खण्डित मस्तिष्क अपने अतिक्रमण के प्रयास में विकृत मस्तिष्क को ही जन्म देगा। न्याय का विवेक ही मानव मस्तिष्क को अपने वास्तविक सृजनात्मक सारतत्व से सम्पन्न कर सकता है'। (पृ. 315)

लेखक मस्तिष्क की जिस दासता के संभावना की ओर इशारा कर रहा है उसे समझने के लिए हम ज्ञान युग के उनके विश्लेषण के साथ आगे बढ़ते हैं। जीवन क्रम के समय का 'खाली समय' और 'उत्पादक समय' में विभाजन से जोड़ते हुए हमारी ज़रूरतों को दो भागों में बाँटा जाता है— भौतिक ज़रूरतें एवं मानसिक ज़रूरतें।

'आज तक मानव जाति की सभी उत्पादन प्रणालियों मुख्यत: मनुष्य की भौतिक ज़रूरतों पर आधारित रही हैं, खाली समय की मानसिक ज़रूरतें उसके पूरक की भूमिका में रही हैं' (पृ. 268)।

आज के ज्ञान युग में 'मानसिक ज़रूरतें भौतिक ज़रूरतों का नियमन करने लगी हैं।' मस्तिष्क उत्पाद (सूचना उत्पाद) ही इन मानसिक ज़रूरतों को पूरा करती हैं। मस्तिष्क उत्पादों की पल-पल बदलती दुनियाँ मस्तिष्क का मस्तिष्क पर अतिक्रमण के प्रयासों से सम्भव हो रहा है। कृत्रिम बुद्धि या कृत्रिम मस्तिष्क बनाने की योजना मस्तिष्क द्वारा मस्तिष्क की सीमाओं का अतिक्रमण का प्रयास हैं। इस संदर्भ में लेखक ज्ञान का एक सिद्धांत प्रस्तुत करते हैं जो इस नये इस युग का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है :

'किसी भी चीन का ज्ञान उसके कृत्रिम सृजन के रूप में ही प्रामाणिकता प्राप्त करता हैं।'

फिर आगे वे लिखते हैं :

'हम अपने विकास के उस स्तर पर जा पहुँचे हैं, जहाँ हमारे सामने चुनौती 'कृत्रिम मस्तिष्क' का निर्माण करना और मानव मस्तिष्क को वश में करने की क्षमता का इजहार करना है। मस्तिष्क का ज्ञान मस्तिष्क का अतिक्रमण है।'

न्याय के विवेक के अभाव में मस्तिष्क द्वारा मस्तिष्क के वशीकरण और दासता की संभावना बनी हुई है। स्वतंत्र सृजनात्मक

संभावनाएँ तो हैं। पर मस्तिष्क उत्पादों के विक्रेता और पैरोकार आपके 'पवित्र मुक्त समय का एक छोटा अंश पाने की चाह में' आपके दबे घाव उघाड़ते हैं, आपकी शान को ललकारते हैं, आपकी इर्ष्या भड़काते हैं'। (पृ. 283) 'अवकाश के विस्तृत होते अंतराल में एक ओर मस्तिष्क की उन्मुक्त सृजनशीलता की आधारशिला रखना, उसके लिए उपयुक्त अधिसंरचना तथा अवसर उपलब्ध कराना और दूसरी ओर, आपके मस्तिष्क को वश में कर उसी अंतराल के एक-एक क्षण को आपसे चुरा लेना ज्ञान समाज का लाक्षणिक द्वैत है।'

**'अभाव'**

पर यह तो इंटरनेट की मायावी दुनिया में हमारी स्वतंत्रता खोने की संभावनाओं की बात हुई। इसका व्यापक सामाजिक अर्थ क्या है? लेखक कहते हैं :

'मानवजाति की विशाल बहुसंख्या की ऐतिहासिक परतंत्रता इसका आधार है। इस ज्ञान समाज के लिए भी इस परतंत्रता से निजात पाना मस्तिष्क की उनमुक्त सृजनशीलता की कार्य सूची में नहीं है। अगर अरबों लोग मूलभूत संसाधनों से, स्वतंत्रताओं और अधिकारों से वंचित रहेंगे तो ज्ञान समाज की बहुसंख्या भी मस्तिष्क के ज्ञान उत्पादों का निष्क्रिय उपभोक्ता बनी रहेगी... ज्ञान का वास्तविक अर्थ संस्कृति के व्यापक फलक पर ही खुलेगा' (पृ. 284)।

लेखक के अनुसार ज्ञान युग का बहुसंख्यक मनुष्य ज्ञान उत्पादों के उपभोक्ता के रूप में ही मुखर है। मनुष्य जब निष्क्रिय उपभोक्ता मात्र न रहकर साथ ही उत्पादक एवं सृजनशील हो जाएगा तो ज्ञान युग में स्वतंत्रता के द्वार खुलेंगे। इस दृष्टि के मूल में 'एक अभाव' है जो सिर्फ़ आज ही नहीं है बल्कि मनुष्य के इतिहास का एक अभिन्न अंग रहा है और जो बहुसंख्यक मनुष्य के ऐतिहासिक परतंत्रता का आधार है। यह 'अभाव' ज़्यादातर भौतिक ज़रूरतों का है। जस तक इस अभाव की पूर्ति के साधन नहीं बन जाते मनुष्य को स्वतंत्रता नहीं मिल सकती। विज्ञान के युग में भौतिक अभावों की पूर्ति के उपकरण तैयार हो चुके हैं, अब ज्ञान युग में मानसिक अभावों की पूर्ति के औज़ार बनने शुरू हो गये हैं।

मैं ने इस कथा पर विश्वास करना छोड़ दिया है। ये कहानी लोडेड लगती है। एक संभाव्य विपुलता के आधार पर आधुनिक युगों का महिमा मण्डन। न ही ये सत्य लगता है कि मनुष्य का अतीत सिर्फ़ भौतिक अभावों से त्रस्त था। ढाई हज़ार वर्ष पहले बुद्ध अगर दु:ख का सत्य उद्घाटित कर उसके निदान का उपाय सुझाते हैं और इससे समाज और ज्ञान में एक ऐसा भूचाल आ जाता है जिसका प्रभाव पूरे एशिया में दिखता है तो फिर पूर्व आधुनिक मनुष्य की कहानी भौतिक अभावों से संघर्ष की कहानी मात्र ही नहीं है। न ही ये आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के लिए सत्य है कि उनका दावा भौतिक अभावों की पूर्ति तक सीमित है। वे भी हमारे दु:खों के निवारण का दावा करते हैं।

दूसरा बिंदु है कि अगर हम ज्ञान युग में दाख़िल हो रहे हैं तो मनुष्य की एक नयी पहचान बन रही है एक ज्ञानवाण प्राणी के रूप में। कम से कम संभावना है ऐसी पहचान बनने की। जैसे औद्योगिक समाज में मनुष्य की पहचान श्रम से हुई और उसकी मुक्ति की कवायद श्रम की मुक्ति से हुई, उसी प्रकार ज्ञान युग में मनुष्य की पहचान ज्ञान से होगी एवं ज्ञान की मुक्ति में वो न्याय के सूत्र ढूँढेगा।

पुस्तक के अंतिम अध्याय ज्ञान का प्रस्थान में लेखक न्याय के लिए होने वाले आंदोंलन का ज़िक्र करते हैं— सामाजिक आंदोलन, पर्यावरण आंदोलन, स्त्री आंदोलन तथा अन्य। इनमें कोई आंदोलन 'ज्ञान' या 'ज्ञान युग' को अपनी चिंता या चिंतन के मध्य में नहीं रखता और न हीं 'ज्ञान' में न्याय का कोई सूत्र ढूँढ़ता है। न ही लेखक 'ज्ञान युग' की कोई अलग परिवर्तनकारी राजनीति बनते देखता है। औद्योगिक युग से चलती आ रही राजनीति में हो भरोसा रखता है। जबकि उस तरह की राजनीति अपनी शक्ति खोती हुई दिखायी दे रही है।

इस सिलासिरो में मार्क्सवाद सहित सारे आधुनिक सोच की एक समस्या है। समस्या ये है कि उनके दृष्टिकोण के अनुसार बहुसंख्यक मनुष्य के ज्ञान की पहचान ही मुश्किल है। क्यूँकि वे तो अनपढ़ हैं, निरक्षर हैं, ड्रॉप आउटस हैं। चूँकि जीवन है तो ज्ञान होगा ही, पर उनका ज्ञान आधुनिक ज्ञान के कुछ घटकों को आत्मसात् करने के बावजूद आधुनिक नहीं है। भले ही वो इस ज्ञान के उत्पादों और संरचनाओं से घिरे क्यूँ न हों।

भारत जैसे समाज में बहुसंख्यक मनुष्य अपनी जीविका और अपना जीवन आज भी अपने ज्ञान के आधार पर ही चलाते हैं जिन्हें अर्थशास्त्रीय भाषा में 'इन्फॉर्मल सेक्टर' कहते हैं। इनके अपने ज्ञान के स्रोत कई हैं, जिनमें ज्ञान-परम्पराएँ हैं, आधुनिक ज्ञान भी है, गुरु है, परिवार है इत्यादि। विज्ञान युग के भूचालों से गुज़र कर यह अनपढ़ मनुष्य अब ज्ञान युग में प्रवेश कर रहा है। इस नये ज्ञान युग में ज्ञान की एक नयी समझ बनी है जिसके कारण बहुसंख्यक के ज्ञान को भी एक पहचान मिली है। इस युग में हर क्रिया में ज्ञान की भागेदारी देखी जाती है। विज्ञान के वर्चस्व में वैज्ञानिक पद्धति से प्राप्त ज्ञान की ही पहचान थी। ज्ञान युग में आप किस पद्धाति से ज्ञान प्राप्त करते हैं यह महत्त्वपूर्ण नहीं। अगर अर्थव्यवस्था आपके ज्ञान में मूल्य देखती है तो वह

ज्ञान हैं और इस युग में उसी ज्ञान का मूल्य है जो डिजीटल दुनियाँ में प्रवेश पा सके।

आधुनिक दृष्टि में बहुसंख्यक मनुष्य की मनुष्यता उसके 'श्रम' से मिलती है। परंतु श्रम के अंदर कई श्रेणियाँ हैं— शारीरिक श्रम, महिलाओं का घर में किया जाने वाला श्रम, खेतों में किया जाने वाला श्रम, कारीगरों का श्रम, फ़ैक्टरियों में किया जाने वाला श्रम, ज्ञान श्रम, मानसिक श्रम। जिस श्रम के ज्ञान-आधार की सामाजिक पहचान जितनी ज़्यादा, उस श्रम की श्रेणी उतनी ही उपर होगी। समाजवादी कल्पनालोक में भी श्रम की ये श्रेणियाँ विद्यमान है। हर प्रकार के श्रम के साथ एक ज्ञानलोक जुड़ा है। अगर हम इन सारे ज्ञानलोकों को बराबरी में देखें, तो श्रम की बराबरी का भी रास्ता खुलता है। लोकविद्या विचार (5) यहीं से ज्ञान युग में न्याय के सूत्र ढूँढ़ता है और ज्ञानी मनुष्य को विचार और राजनीति के मध्य में ले आता है।

क्या यह पुस्तक आधुनिक दृष्टिकोणों का अतिक्रमण करते हुए ज्ञान पर एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है? क्या आज के बहुसंख्यक मनुष्य के ज्ञान की एक नयी और परिवर्तनकारी पहचान यहाँ बनती दिखती है? इस पुस्तक को पढ़ने के और भी तरीक़े हो सकते हैं पर व्यक्तिगत रूप से इस पुस्तक से मेरा संवाद इन्हीं प्रश्नों की धुरी पर चलता रहा है। इस लेखक से जो मेरी अपेक्षाएँ रही हैं, वो ऐसे ही संवाद के लिए प्रेरित करती रही हैं।

**मनुष्य का आगमन और मध्यपाषाण कालीन ज्ञान का विस्फोट**

अभी तक तो हमने पुस्तक की अंतिम तिहाई ही देखी है, सिर्फ़ 'ज्ञान का अर्थ' देखा है। 'आगमन का आख्यान' से जो मनुष्य की यात्रा का आख्यान शुरू होता है वो 'मस्तिष्क का माया जाल' से गुज़रते हुए 'मध्यपाषाण-कालीन मानव तक जाता है और लेखक आज से हज़ारों लाखों वर्ष पूर्व हुए 'ज्ञान के विस्फोट' की बात करता है। फिर हम पहुँचते हैं 'समाजों की सहक्रिया' पर जहाँ कृषि युग का संधान है।

पर यह 'हिस्ट्री' नहीं है। यह एक ऐसी यात्रा का वृत्तांत है जो 'हिस्ट्री' के साथ चली है। विभिन्न खण्डों में अलग-अलग 'हिस्ट्री' है पर पूरे पुस्तक की योजना 'इतिहास' जैसी है। ये एक कथा है ज्ञान की जो कई कथाओं को जोड़कर बनी है। पुस्तक की शुरुआत महज दो पन्नों के पहले अध्याय से होती है जिसका शीर्षक है 'आगमन का आगाज' और वो इस प्रकार शुरू होता है— 'प्रत्येक प्रस्थान आगमन की नयी कथा के साथ आरम्भ होता है।' प्रस्थान है ज्ञान युग में ज्ञान का नया प्रस्थान और आगमन है ज्ञान का आगमन और उसके साथ ही मनुष्य का आगमन।

पुस्तक के पहले खण्ड में आधुनिक मानवशास्त्र के आधार पर मानव जाति के प्रादुर्भाव का एक संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया गया है जो कि आगे मष्तिक विज्ञान की कथा में बदल जाता है।

'पहला चरण आस्ट्रालोपियोसिन से होमो इरेक्टस तक का विकास है। दूसरा चरण होमो इरेक्टस से होमो सेपिन्स सेपियन्स के विकास का है। पहले चरण में, कार्य सक्रियता अथवा दो मुक्त हाथों द्वारा किये जाने वाले श्रम ने निर्णायक भूमिका अदा की। दूसरे चरण में मष्तिक तथा वाक्-भाषा क्षमता के विकास ने' (पृ. 40)।

एक समय के बाद होमो सेपियन्स सेपियन्स का उद्भव होने के बाद (जो शारीरिक रूप से आधुनिक मानवों सरीखा है) एक लाख वर्ष के काल खण्ड को उत्तर पुरा पाषाण काल कहते हैं :

'जहाँ उत्तर पुरापाषाण काल आधुनिक मानव के आगमन का काल है, वहीं मध्यपाषाण काल से वास्तविक इतिहास की शुरुआत होती है। इसी काल में हम 'ज्ञान के पहले विस्फोट का साक्षात् करते हैं जिसमें आधुनिक मानव अपनी विविधता, भव्यता और प्रतिभा के साथ उपस्थित होता है।'

इस 'ज्ञान विस्फोट' के आधार पर लेखक तर्क देते हैं कि प्राक्-इतिहास को बीस हज़ार वर्ष पीछे ठेल कर इतिहास की शुरुआत मध्यपाषाण काल से मानी जानी चाहिए। लेखक मध्यपाषाण कालीन (करीब तीस हज़ार से आठ हज़ार वर्ष पूर्व का काल खण्ड) जीवन का एक वृत्तांत प्रस्तुत करते हैं। इस काल की पहचान उस समय के सूक्ष्म प्रस्तर उपकरणों से की जाती है। इनमें ऐसे उपकरण भी शामिल हैं जिनकी उपयोगिता अन्य उपकरणों के निर्माण में है। इन्हीं उपकरणों का इस्तेमाल गुफ़ाओं में पत्थर की दीवारों पर कलाकृतियाँ गढ़ने में भी होता था। ये कलाकृतियाँ भी इस काल की महत्त्वपूर्ण पहचान है। इसी दौरान डोंगियों और नौकाओं का भी विकास हुआ तथा मछलियों के शिकार का विस्तार भी हुआ जिसके लिए रस्सियों और जालों का निर्माण भी ज़रूरी था। इन उपकरणों के विकास और इस्तेमाल और उनसे जुड़े चित्रकला और मूर्तिकला का विकास ही उस ज्ञानविस्फोट की निशानी है जिसे लेखक रेखांकित करते हैं।

इसके बाद लेखक मध्यपाषाण कालीन मैजिक की ओर मुड़ते हैं। आदिम संस्कृति की मानवशास्त्रीय समझ के बनने में

'मैजिक' की श्रेणी का महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थान है। शायद इसलिए लेखक ने अनुवाद न कर शब्द को ज़्यों-का-त्यों छोड़ दिया है उसकी अपनी व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। प्रजनन-शक्ति, अन्न-शक्ति, स्वपन इत्यादि के आधार पर मध्यापाषाण कालीन मानव के कल्पना लोक और जीवन दृष्टि की एक कवित्वमय एवं अंर्तदृष्टि-पूर्ण झाँकी प्रस्तुत की गयी है।

यहाँ लेखक हमें सावधान करता है कि इस युग के जादू-टोनों को महज अंधविश्वास कह कर हम खारिज नहीं कर सकते। उनके अनुसार 'इस मिथ्या आस्था और अन्धविश्वास के केंद्र में सापेक्ष सत्यों का समूह होता था। दरअसल, सापेक्ष सत्य का निरपेक्ष सार्विकरण ही 'मिथ्या आस्था' अथवा अंधविश्वास है जो सिर्फ़ जादू-टोने पर ही नहीं वरन् अनेक आधुनिक विचार प्रणालियों और जीवन दृष्टियों पर भी लागू होता है।' (पृ. 140) समाज में व्याप्त ज्ञान का इस तरह का विश्लेषण पुस्तक में पहले ही एक अध्याय 'मस्तिष्क : स्मृति और ज्ञान' हो चुका होता है। वहाँ लेखक कहते हैं :

> 'एक ही समय एक साथ कई (कहिए अनन्त) सत्य मौजूद रहते हैं। संघर्ष और टकराव की स्थिति तब पैदा होती है जब एक सापेक्ष सत्य एक मात्र सत्य होने का दावा करते हुए अन्य सारे सापेक्ष सत्यों का सफाया करने लगता है। हर सत्य का अपना समय है, अपना स्थान है, अपनी उम्र है' (पृ. 107)।

अपने अध्ययन और इस सिद्धांत के आधार पर लेखक मध्यपाषाण कालीन संस्कृति को मानवजाति के इतिहास में एक सम्मानजनक स्थान का हक़दार मानते हैं। आज भी पूरी दुनियाँ में बिखरे जनजातीय समुदायों को समाज में समानता और सम्मान का स्थान दिलाने के लिए भी इस ऐतिहासिक संस्कृति की यह सम्मान जनक पहचान ज़रूरी है, ऐसा लेखक मानते हैं। पर इस संस्कृति की विरासत जनजातीय समुदायों तक ही नहीं है बल्कि व्यापक समाज में भी फैली हुई है।

'एक आम मध्यवर्गीय भारतीय के रसोईघर में झाँक कर देखिए। वहाँ पच्चीस लाख वर्षों का इतिहास एक साथ मौजूद दिखेगा। झिल्ला-लोढ़ी जहाँ पुरापाषाण काल की याद दिलाता है, वहीं अनेक खाद्य सामग्रियाँ, बर्त्तन-बासन, आदि युग की। बिजली के उपकरण, गैस चूल्हा आदि औद्योगिक युग की देन हैं, तो माइक्रोवेव ओवन 'इलेक्ट्रोनिक' ज्ञान युग की' (पृ. 108)।

लेकिन जो ज्ञान आज हम पाते हैं चाहे ज्ञानी मनुष्यों के रूप में या वस्तुओं के रूप में, यह वही ज्ञान नहीं है जो मध्यपाषाण कालीन युग में था। यह ज़रूर है कि उस काल की ज्ञान परम्पराएँ एक नये रूप में अभी भी जीवित हैं, पर वो जीवित न रहतीं, अगर बदलती न रहती।

मध्यपाषाण संस्कृति का विस्तार दुनियाँ भर के विभिन्न क्षेत्रों में हुआ। लेखक इस संस्कृति के अवशेषों की एक लम्बी सूची प्रस्तुत करते हैं जिससे इसके विस्तार का पता चलता है। (पृ. 143-47) लेखक द्वारा दिये गये मध्यपाषाण कालीन समाज और संस्कृति के विस्तृत विवेचन में एक बात खटकती है। मध्यपाषाण मैजिक का विवेचन इस प्रकार शुरू होता है :

> 'मध्य पाषाणकालीन शिकारी, फल संग्राहक तथा मछुआरे समुदायों की रोज़मर्रे की ज़िंदगी की कल्पना कीजिए। उनका प्राकृतिक परिवेश एक आश्चर्य लोक की भाँति सदा उनके साथ होता।'

इस कल्पना में अनेक रंग भरते हुए लेखक आगे कहते हैं :

'और इस आश्चर्यलोक में मानवों के छोटे-छोटे कुनबे थे - हर पल भोजन तथा अपनी सुरक्षा की चिंता में कठोर श्रम-साध्य जीवन जीते।'

क्या हमारी सुरक्षा और भोजन की चिंता आज बहुत कम है? और फिर अँधेरी गुफ़ाओं में पत्थरों पर कला कृतियाँ बनाने की फुरसत, और उर्जा, कहाँ से आई? मुझे तो यह वाक्य थॉमस हॉब्स की पुस्तक से उछल कर आ गयी लगती है जहाँ हॉब्स प्राकृतिक जीवन, का वर्णन 'नैस्टी, ब्रूटिश, शार्ट' के रूप में करते हैं जो कि राज्य व्यवस्था बनने से पहले का समय है।

**वैध और अवैध एकत्व**

इस खण्ड के अंत में लेखक इतिहास की उस आधुनिक दृष्टि का खण्डन करते हैं जो प्रबोधन कालीन युरोप में उभरा और जिसके अनुसार 'कृषि के विकास के साथ-साथ नगरीकरण, व्यापार तथा लेखनी की शुरुआत, और निजी संपत्ति तथा राजसत्ता की उत्पत्ति को 'सभ्यता' के रूप में चिह्नित किया गया'। (पृ. 148) लेखक 'सभ्यता' की श्रेणी को ही पाखण्डपूर्ण बताते हैं। इस सभ्यता मूलक चिंतन की छानबीन पुस्तक के अगले खण्ड 'समाजों की सहक्रिया' में भी जारी रहती है।

इस अगले खण्ड में लेखक मध्यपाषाण काल से कृषि युग में हुए सामाजिक परिवर्तनों की व्याख्या करते है। इस सिलसिले में जन से जाति की ओर समाज की गति का भी संधान है। पर उससे पहले, इस खण्ड के पहले अध्याय में वे विभिन्न ऐतिहासिक विचार प्रणालियों को एक सामान्य धरातल पर लाते हैं और इसका वैचारिक आधार यूँ बनता है :

'कुल मिलाकर, सृष्टि के साथ एकत्व को, और सृष्टि के अन्य अस्तित्व-रूपों के साथ अपने पार्थक्य को परिभाषित करने की यह प्रवृत्ति मानव जाति के इतिहास में हर काल में विद्यमान रही है। जीविकोपार्जन की अलग-अलग विधियों और देश-काल की भिन्नताओं के कारण यह मूल वृत्ति अनेक रूपों में अभिव्यक्ति पाती रही है'। (पृ. 160)

लेखक तीन विचार प्रणालियों का उल्लेख करते हैं— मैजिक, पंथ और सेक्यूलर, जो क्रमशः मध्यपाषाणकाल, कृषि युग तथा औद्योगिक युग से जुड़ी हैं। इनके बीच का संबंध श्रेष्ठ-निम्न का नहीं है। सभी में अपने ही सापेक्ष सत्यों का समूह भी है और सभी के अपने अंधविश्वास भी हैं। 'अपनी मूलभूत समानताओं के कारण, तीनों आज भी साथ-साथ फल-फूल रही हैं' (पृ. 163)। इन तीनों से अलग तथा इनके समानांतर 'एकत्व के सारतत्व' की परम्परा मानव समाज में हमेशा उपस्थित रही है और इसे लेखक 'आध्यात्मिक धारा' कहते हैं। इस प्रकार की विचार शृंखला के द्वारा लेखक आधुनिक सेक्युलर विचार प्रणाली को 'श्रेष्ठता के दंभ' से वंचित करता चाहते हैं। ज्ञान की पुर्नजागरण-प्रबोधन कालीन युरोपीय समझ की जगह यह निश्चय ही एक नयी दृष्टि है जो ज़्यादा खुली और समतामूलक है। लेकिन ज्ञान युग इन विचार प्रणालियों से क्या संबंध बनाती है, इस पर लेखक मौन है।

लेखक की विवेचना में दो प्रकार के 'एकत्व' दिखते हैं। एक तो 'एकत्व के सारतत्व' की परम्परा जिसे आध्यात्मिक धारा के रूप में जाना जाता है। और दूसरा जो तीन प्रकार की विचार-प्रणालियों के सापेक्ष सत्यों के सार्विकरण से बनती हैं। इस दूसरे एकत्व की त्रृटि यह है कि यहाँ सापेक्ष को परमार्थिक मान लिया जाता है। फिर लेखक ये भी कहते हैं कि '...यह आध्यात्मिक धारा विभिन्न रूपों में, मैजिक, पंथ और सेक्यूलर विचार प्रणालियों में भी अपनी उपस्थिति दर्ज करती रही है।'

यहाँ एक अस्पष्टता आ गयी लगती है। सापेक्ष के अवैध सार्विकरण से बना एकत्व अंधविश्वास हो सकता है। परंतु सापेक्ष सत्यों का समूह अपना एकत्व अपने स्रोत या उद्गम में ढूँढ़ती है। एक बिल्कुल नयी खोज होती है, एक नया सूत्र मिलता है, एक नया ज्ञानोदय होता है, एक नयी दृष्टि उभरती है, और फिर इससे ही सापेक्ष सत्यों का एक समूह बनता है, नयी जीवन प्रणाली बनती है।

इनसे अलग एकत्व की आध्यात्मिक धारा से हम क्या समझें? क्या पारमिनाइड्स, प्लेटो से चलती हुई आधुनिक भौतिकवादी दृष्टि तक आने वाली धारा, या फिर अद्वैत की धारा, या फिर इस्लाम या सूफ़ी धारा? इस तरह देखें तो आध्यात्मिक धाराएँ भी अनेक हैं। अगर कोई दृष्टि सारे आध्यात्मिक धाराओं में एकत्व के दर्शन करती है तो इतिहास या समाज में ये एक विशिष्ट ज्ञान की धारा के रूप में ही प्रकाशित होती है। ये भी ज्ञान की एक धारा है, अन्य धाराओं की तरह। प्रकार-प्रकार के ज्ञान की धाराएँ हैं। इन सबसे ऊपर बैठा ज्ञान की कोई धारा नहीं है, आध्यात्मिक या अन्य, जो सबको अपने में लपेट ले।

**जन से जाति**

इस खण्ड के अगले अध्यायों में पहले तो शिकारी फलसंग्राहक जन समाज का विघटन और जन के स्वरूप में जातियों के आगमन का वृत्तांत है। फिर हमें जाति व्यवस्था के उर्ध्वमुखी सोपानमूलक संरचना की संक्षिप्त किंतु अत्यंत पैनी विवेचना मिलती है। यहाँ इस व्यवस्था के विरोध में उभरे स्वरों और संघर्षों का विवरण भी उल्लेखनीय है। पर जैसा कि इस समीक्षा का तेवर रहा है, हम इस व्यवस्था में ज्ञान-संबंधित बिंदुओं की व्याख्या की ओर अग्रसर होते हैं। 'समाजों की सहक्रिया' शीर्षक अध्याय में लेखक कहते हैं :

जातिप्रथा ने अमूर्त्त चिंतन और उत्पादक श्रम को दो निरपेक्ष श्रेणियों में बाँट दिया था। ... ब्राह्मणों के लिए उत्पादक श्रम वर्जित था और शूद्रों के लिए शिक्षा-दीक्षा तथा अमूर्त्त चिंतन। इन दोनों क्षेत्रों के बीच आवाजाही का दरवाज़ा जन्म से ही बंद था' (पृ. 210)।

इसे ही वे भारतीय समाज की गतिरुद्धता का प्रमुख कारण मानते हैं। इस प्रकार की व्याख्याएँ पहले भी आयी हैं और इस पर विस्तृत बहस की ज़रूरत है। मेरे शिक्षक और स्वतंत्र चिंतक पी. आर. के. राव इसे हाथ और मस्तिष्क के अलगाव के रूप में देखते थे। एक ओर लेखक मानते हैं कि कई विषयों की शामिल करते हुए 'अमूर्त्त चिंतन के क्षेत्र में ब्राह्मण चिंतकों ने ज्ञान को पर्याप्त विस्तार दिया... परिणाम स्वरूप दर्शन, ज्योतिष-शास्त्र, गणित-ज्यामिति, भाषा विज्ञान, वास्तुशास्त्र, सौंदर्यशास्त्र, आर्युविज्ञान, कर्मकाण्ड, आदि क्षेत्रों में अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की गयी और ज्ञान की नयी ऊँचाइयों को छूने का प्रयास किया गया।'

लेकिन दूसरी ओर '... शिक्षा से, अमूर्त्त चिंतन के अवकाश से वंचित जातियाँ थी— कृषक, कारीगर तथा सेवक जातियाँ। ये जातियाँ भी अमूर्त्त चिंतन से अलगाव की स्थिति में जिस सीमा तक जा सकती थीं, उस सीमा तक गयी'। (पृ. 211) कृषि, धातु-कर्म इत्यादि के उदाहरण यहाँ हैं जहाँ नयी विधियाँ का आना हुआ और कई विकास हुए। लेखक के अनुसार शैक्षणिक

सामग्री का अभाव (अमूर्त्त चिंतन के अभाव के कारण) इस प्रकार की विद्याओं के ह्रास का कारण बना। 'कारीगर वह ज्ञान भी भूलने लगे जो उनके पूर्वजों ने अर्जित किया था'। (पृ. 212) अमूर्त्त चिंतन का विकास भी उत्पादन से अलगाव के कारण अवरुद्ध हो गया। उदाहरण के लिए, बारहवीं सदी के भाष्करायार्य की ऋण ईकाई के वर्गमूल ( ) की कल्पना जो अमूर्त्त चिंतन की पराकाष्ठा थी किसी उत्पादन कार्य में प्रयुक्त नहीं हुई। इसकी तुलना लेखक युरोप के पुर्नजागरण काल (सोलहवीं सदी) में हुए जेरोलामो कारडोमों से करते हैं जो कई व्यवहारिक गतिविधियों से जुड़े थे और जिनका योगदान ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में है।

ये मानना कि कृषि, धातु-कर्म इत्यादि ज्ञान-परम्पराओं में अमूर्त्त चिंतन अनुपस्थित है, यह सही नहीं है। ये ज़रूर है कि इस तरह कई विधाओं के शास्त्र नहीं बने और कह सकते हैं कि शास्त्रीय ज्ञान पर ब्राह्मणों का वर्चस्व रहा। स्थितियों की जटिलता को देखने आर्युविज्ञान का एक विशिष्ट उदाहरण लें जो कि एक व्यावहारिक शास्त्र भी है। हम पाते हैं कि चरक संहिता एवं सूश्रुत संहिता लिखे जाने के पहले समाज में चिकित्सकों की स्थिति ऊँची न थी जैसा कौटित्य के अर्थशास्त्र में दिखता है। यहाँ ज्ञान का एक विस्फोट हुआ होगा। जिसके तहत ये ग्रंथ लिखे गये और आर्युविज्ञान एक शास्त्र बना। इनके लेखक ब्राह्मण थे। ये कैसे हुआ? क्या ब्राह्मणों ने अचानक एक नयी विद्या सीख ली और ऐसे उत्कृष्ट ग्रंथों की रचना कर डाली जो उस समय ज्ञान की उच्चतम सीमा थी? ऐसा मानना ज्ञान की इस विधा का अपमान ही होगा। या फिर इस विद्या में क्रांति लाने वाले ब्राह्मण बन गये? पूरी जानकारी के अभाव में मेरे लिए कुछ करना मुश्किल है। दूसरी ओर धातु विद्या को लेते हैं। मध्यभारत की पहाड़ियों में बसने वाले अगड़िया समुदाय के लोग धातु-विद्या के जानकार हैं और अभी भी स्टील (शुद्ध लोहा) तैयार कर सकते हैं। (6) 1992 में पी.पी. एस. टी समूह द्वारा आयोजित 'पहली ट्रैडिशनल साइंस काँग्रेस' आई.आई.टी मुंबई में संपन्न हुई जहाँ अगड़िया समुदाय के कुछ ज्ञानी लोग अपनी विद्या के प्रदर्शन के लिए पहुँचे और अपनी भट्ठी बिठाई। चूँकि वहाँ पर उपलब्ध कोयला और शायद वहाँ की मिट्टी भी अलग थे, पहले दिन स्टील नहीं बना। दूसरे दिन उन्होंने अपनी पद्धति में बदलाव कर उन्होंने शुद्ध लोहा तैयार कर दिया। पारम्परिक समाज के कई उपकरण इनके धातु से ही बनते थे। अब तो बिल्कुल ग़रीबी में रहते हैं और इनके ज्ञान की कोई पूछ नहीं है। क्या इस प्रकार की गतिविधि अमूर्त्त चिंतन और अमूर्त्त कल्पना के बग़ैर संभव हैं? सवाल यहाँ ये उठता है कि क्या ये विधाएँ और इन विधाओं के स्वामी उसी सम्मान के हक़दार हैं जो कि शास्त्रों के स्वामी, या फिर युनिवर्सिटी के आधुनिक विधाओं के स्वामी को मिलती है।

लेखक इस बात पर ज़ोर देना चाहते हैं कि विभिन्न समूहों के बीच सामाजिक-सांस्कृतिक संबद्धता का अभाव होने से ज्ञान का विकास अवरूद्ध हो जाता है। इस पुस्तक की चिंता ये भी है कि 'एक न्यायपूर्ण, समृद्ध समाज की स्थापना ... विचारों और वस्तु के जादूगरों की कार्य सूची में कभी प्रमुखता नहीं पा सका'। (पृ. 223)

क्या ज्ञान का कोई ऐसा दर्शन हमारे सामने आ सकता है जो ज्ञान की गति का निर्धारण बहुसंख्यक मानव समाज के सामान्य जीवन की गति/प्रगति के पैमाने पर करे? ऐसा लगता है यह पुस्तक ऐसे ही किसी दर्शन की खोज में लिखी गयी। इस समीक्षा का तर्क ये रहा है कि ज्ञान के ऐसे किसी पैमाने की शर्त है कि मनुष्य एक ज्ञानवान प्राणी है और अंतिम मनुष्य भी ज्ञानी मनुष्य है। ज्ञान युग में समता की शर्त इससे कम तो नहीं हो सकती। ज़्यादा जो भी हो।

***

**फुटनोट**

[1] 'साधो, अशब्द साधना कीजै' समकालीन भारतीय साहित्य, 53 जुलाई-सितम्बर 1993, पृ. 35-44.

[2] 'अनंत का छंद : एक तत्त्व शास्त्रीय विमर्श', आधार प्रकाशन, पंचकुला, 2004.

[3] 'स्वर्ग पर धावा : बिहार में दलित आंदोलन, 1912-2000', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2005. '1857 : बिहार-झारखण्ड में महायुद्ध', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2008. (सहलेखक : श्रीकांत)

[4] prasannachoudhary.blogspot.in

[5] देखें, 'लोकविद्या पर्सपेस्टिक्स : ए फिलॉसफ़ी ऑफ़ पॉलीटीकन इमजिनेशन फ़ॉर द नॉलेज एज', संपादक : अमित बसोले, आकार प्रकाशन, दिल्ली, 2015, या वेबसाइट देखें : www.vidyaashram.org.

[6] Agariya vidya _ A line in the philophy of emancipalion / sunil sahasrabudhe vidyashram.org/papers /agania.pdf
पुस्तक ' लोकविधा पर्सपेक्टिस' में भी उपलब्ध।